SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिपेक्ष्य मे सार्थकता

राघवेन्द्र सिंह सिकरवार, (Ph.D.), शिक्षा विभाग,
संत योगी मान सिंह शिक्षा महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
राघवेन्द्र सिंह सिकरवार, (Ph.D.), शिक्षा विभाग,
संत योगी मान सिंह शिक्षा महाविद्यालय,
ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 05/07/2022
Revised on : -----
Accepted on : 12/07/2022
Plagiarism : 00% on 06/07/2022

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 0%

Date: Wednesday, July 06, 2022
Statistics: 0 words Plagiarized / 2600 Total words
Remarks: No Plagiarism Detected - Your Document is Healthy.

डॉ. राघवेन्द्र सिंह सिकरवार सहायक प्राध्यापक संत योगी मान सिंह शिक्षा महाविद्यालय, ग्वालियर मोबाइल न. 9425121062 ई–मेल तंहीअमदकतं09 / तमकपाॅिंपसण्बवउ "स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों की वर्तमान परिपेक्ष्य मे सार्थकता" सारांश– स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के प्रादुर्भाव के समय हमारा देश वर्ण, जाति एवं वर्गो तथा गुलामी की त्रासदी से गुजर रहा था। देश में सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिकता की स्थिति अति दयनीय हो गई थी। हमारी शिक्षा को भी पाश्चात्य रंग में ढाला जा रहा था। इन समस्याओं से निजात पाने हेतु आप 1876 में "भारतीयों के लिए भारत" के रूप में स्वराज का आव्हान करने वाले पहले व्यक्ति थे जिसे बाद में लोकमान्य तिलक जी द्वारा प्रचारित किया गया। दार्शनिक और भारत के राष्ट्रपति एस. राधाकृष्णन ने इन्हें "आधुनिक भारत के निर्माताओं" में से एक कहा है। लोकमान्य तिलक ने उनके विषय में लिखा है–"ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे, जो भारतीय आकाश पर अलौकिक आभा में चमके और गहरी निद्रा मे सोये हुए भारत को जागृत कर गये।" जिस महान विभूति ने छुआछूत, जाति–पॉति, धर्म सम्प्रदाय में बटे हुए समाज का संगठन कर, शिक्षा में भी भेदभाव दूर कर, सार्वभौमिक तथा अनिवार्य शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, संस्कारों की शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा हेतु प्राचीन संस्कृति को जीवित रखा उस महान विभूति को ही आज हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के नाम से जानते हैं। सॉंकेतिक परिचय :– स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म कठियावाड के मोरवी राज्य के गॉंव टंकारा में 1824 में ब्राहम्ण

शोध सार

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के प्रादुर्भाव के समय हमारा देश वर्ण, जाति एवं वर्गो तथा गुलामी की त्रासदी से गुजर रहा था। देश में सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिकता की स्थिति अति दयनीय हो गई थी। हमारी शिक्षा को भी पाश्चात्य रंग में ढाला जा रहा था। इन समस्याओं से निजात पाने हेतु आप 1876 में "भारतीयों के लिए भारत" के रूप में स्वराज का आव्हान करने वाले पहले व्यक्ति थे जिसे बाद में लोकमान्य तिलक जी द्वारा प्रचारित किया गया।

मुख्य शब्द

देश, सामाजिक, शिक्षा, संस्कृति.

दार्शनिक और भारत के राष्ट्रपति एस. राधाकृष्णन ने इन्हें "आधुनिक भारत के निर्माताओं" में से एक कहा है। लोकमान्य तिलक ने उनके विषय में लिखा है–"ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे, जो भारतीय आकाश पर अलौकिक आभा में चमके और गहरी निद्रा मे सोये हुए भारत को जागृत कर गये।"

जिस महान विभूति ने छुआछूत, जाति–पॉंति, धर्म सम्प्रदाय में बटे हुए समाज का संगठन कर, शिक्षा में भी भेदभाव दूर कर, सार्वभौमिक तथा अनिवार्य शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, संस्कारों की शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा हेतु प्राचीन संस्कृति को जीवित रखा उस, महान विभूति को ही आज हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के नाम से जानते हैं।

साँकेतिक परिचय

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म कठियावाड के मोरवी राज्य के गाँव टंकारा में 1824 में ब्राहम्ण परिवार में हुआ था। आपका मूल नाम मूलशंकर था। आपने 21 वर्ष की आयु में साँसारिक झंझटों में न फसते हुए घर छोड़ दिया। 15 वर्ष जिज्ञासु बनकर सन्यासी रहे

और हिमालय/जंगलों में भटके। 1860 में आप विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्य बने और वेदों की शिक्षा ग्रहण की तथा गुरू दक्षिणा में वेदों पर आधारित समाज बनाने की प्रतिज्ञा लेकर उसी दिशा में काम करना प्रारंभ किया। आपने 1883 में अपने नाशवान शरीर का त्याग किया।

शिक्षा की अवधारणा

स्वामी जी ने शिक्षा को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है जो कि आधुनिक मान्यता भी है। स्वामी द्वारा शिक्षा को आन्तरिक शुद्धि के रूप में मान्यता प्रदान की गई है जो कि मनुष्य के आचरण, विचार तथा कर्म द्वारा प्रदर्शित होती है। स्वामी जी शिक्षा को आत्म विकास का साधन मानते थे। स्वामी जी के अनुसार–''जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मव्यता, जितेन्द्रयादि की बढती होवे और अविद्या दोष छूटे उसको शिक्षा कहते हैं। जिससे पदार्थो का यथार्थ स्वरूप का बोध हो वह विद्या और जिससे तत्व स्वरूप न जान पडे, अन्य में अन्य बुद्धि हो वह अविधा कहलाती है।'' स्वामी जी विशेष रूप से वैदिक विद्या के पक्षधर थे। उनका विचार था कि संसार में जितने दान हैं अर्थात जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र आदि इन सब दानों में वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। स्वामी जी विद्या को बहुत अधिक महत्व देते थे। उसे वे सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक मानते थे। विद्या धन सभी धनों में श्रेष्ठ है, क्योकि अन्य धन व्यय से घटता है जबकि विद्या व्यय से बढती है। स्वामी जी का कथन हैः–''शिक्षा के बिना मनुष्य केवल नाम मात्र का मनुष्य है। शिक्षा प्राप्त करना, सदगुणों का बनाना, ईर्ष्या से मुक्त होना तथा धार्मिकता का उत्थान करते हुए व्यक्तियों के कल्याण का उपदेश देना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।''

शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य हैंः

1. आत्मानुभूति करना।
2. वैदिक संस्कृति का पुनरूत्थान करना।
3. शारीरिक विकास करना।
4. मानसिक विकास करना।
5. नैतिक विकास करना।
6. चरित्र निर्माण करना।
7. राष्ट्रीय एकता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना।

स्वामी जी ने बालक और बालिकाओं को अनिवार्य रूप शिक्षा ग्रहण कराने पर बल दिया है, जिसके द्वारा वे अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर अपनी आत्मा के विषय मे सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आत्मानुभूति कर सकें। स्वामी जी तत्समय उपस्थित समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए प्राचीन आश्रमों एवं गुरूकुलों के द्वारा वैदिक संस्कृति का पुनरूत्थान कर उसे संरक्षण प्रदान करना चाहते थे। स्वामी जी बालकों के शारीरिक विकास के प्रति अत्यधिक सजग थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक बालक एवं बालिकाओं को अधिक से अधिक समय तक बह्मचर्य का पालन करना चाहिए जिसके पीछे उनका उद्देश्य बालकों का शारीरिक विकास रहा है।

स्वामी जी द्वारा आर्य समाज की स्थापना के जो 10 सिद्धांत बनाए गए उनमें प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिए, सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें, सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए तथा संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य लक्ष्य जैसे सिद्धाँत बनाकर वे राष्ट्रीय एकता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना चाहते थे।

शिक्षा के आधारभूत सिद्धाँत

1. बालक के गर्भाधान के समय एवं इसके पश्चात् उसके माता–पिता द्वारा बालक की औपचारिक शिक्षा सम्बन्धी ध्यान रखा जाना चाहिए।
2. बालक की प्रथम पाँच वर्ष की शिक्षा माता द्वारा तत्पश्चात आठ वर्ष की आयु तक पिता द्वारा शिक्षा प्रदान की जाना चाहिए।

3. 8 वर्ष की आयु में बालक–बालिकाओं को पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने हेतु भेज देना चाहिए।
4. बालक –बालिकाओं की शिक्षा हेतु पाठशालाऐं शहर से चार कोश की दूरी पर एकान्त स्थान पर होना चाहिए।
5. बालक –बालिकाओं को ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य रूप से करना चाहिए।
6. बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा के लिए अलग–अलग पाठशालाऐं होनी चाहिए।
7. बालकों की पाठशाला में सभी कर्मचारी एवं अध्यापक पुरूष तथा बालिकाओं की पाठशाला में सभी कर्मचारी एवं अध्यापिका स्त्रीयॉ होना चाहिए।
8. पाठशालाओं में सभी बालक–बालिकाओं के साथ एक समान व्यवहार होना चाहिए, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या कुल के हों।
9. बालक एवं बालिकाओं के लिए शिक्षा ग्रहण करना अनिवार्य होना चाहिए।
10. शिक्षा प्राचीन आश्रम/गुरूकुल पद्धति पर होना चाहिए।

पाठ्यक्रम

स्वामी जी नें बालकों के लिए निम्नानुसार पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गई हैः

1. सर्वप्रथम बालक को पाणिनि के ध्वनि सिद्धॉत व सब अक्षरों का शुद्ध उच्चारण करना माता, पिता तथा आचार्य द्वारा सिखाया जाना चाहिए।
2. ध्वनि सिद्धाँत के उपराँत बालकों को व्याकरण सम्बन्धी अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ, उणदिगण, महाभाष्य, यास्क के निघटु और निरूक्ति, छंदोग्रन्थ, श्लोकों की रचना आदि सिखाना चाहिए।
3. व्याकरण उपरॉत मनुस्मृति, बाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योग पर्वान्तर्गत विदुर नीति जैसे चुने हुए अच्छे प्रकरणों का ज्ञान अध्यापकों द्वारा दिया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थी सुसभ्यता प्राप्त कर सकें।
4. बालकों को सुसभ्य बनाने के उपराँत पूर्व मीमाँसा, वैशेशिक, न्याय, योग, साँख्य और वेदान्त तथा उपनिषदों का ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।
5. वेदों के अध्ययन उपराँत बालकों को आयुर्वेद (चिकित्सकीय ज्ञान), धनुर्वेद (राज्यसम्बन्धी कार्य), गान्धर्व वेद (गान विद्या) तथा अर्थवेद (शिल्प विद्या) का ज्ञान बालकों को प्रदान किया जाना चाहिए।
6. तदनन्तर, ज्योतिशास्त्र, सूर्यसिद्धाँन्तादि जिसमें बीज गणित, अंकः गणित, भूगोल, खगोल विज्ञान तथा भूगर्भ शास्त्र का अध्ययन कराना चाहिए।
7. तत्पश्चात् बालकों को हस्तक्रिया व यन्त्र कला का अध्ययन कराया जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द जी के अनुसार

''इस पाठ्यक्रम को लगभग 20 वर्ष में समाप्त करने के बाद, छात्र को घर लौटना चाहिए, विवाह करना चाहिए और संसार में प्रवेश करना चाहिए।'' (स्वामी दयानन्द सरस्वती, लाइट ऑफ ट्रुथ P-76)

शिक्षण विधि

स्वामी जी द्वारा किसी शिक्षण विधि विशेष को प्राथमिकता प्रदान नहीं की गई है, वह ज्ञान को रटने की अपेक्षा समझने पर अधिक बल देते रहे हैं। स्वामी जी के अनुसार – ''जो श्रोत, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात आवरण रहित सम्बन्ध होता है इससे ज्ञान प्राप्त होता है।''

स्वामी द्वारा स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, व्याख्यान, वाद–विवाद या शास्त्रार्थ तथा प्रश्नोत्तर विधियों को ज्ञानार्जन एवं गूढ रहस्यों को जानने के लिए महत्वपूर्ण माना है।

शिक्षा का माध्यमः स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हिन्दी होना चाहिए। स्वामी जी ने कभी

भी अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करने का विरोध नहीं किया बल्कि उनका मानना था कि बालक को केवल मातृभाषा का ही ज्ञान नहीं होना चाहिए बल्कि मातृभाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा संस्कृत तथा तृतीय भाषा के रूप में अंग्रेजी का भी ज्ञान बालक के लिए आवश्यक है। स्वामी जी ने विश्व के कोने–कोने से ज्ञान ग्रहण करने पर बल दिया किन्तु वह ज्ञान अपनी मातृभाषा, मातृभूमि, संस्कृति व राष्ट्र पर गर्व उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। स्वामी जी द्वारा जो त्रिभाषा का फार्मूला बनाया गया, हमारी शिक्षा प्रणाली में आज इसी फार्मूला का अनुसरण कर शिक्षा प्रदान की जा रही है।

विद्यार्थी: स्वामी जी द्वारा विद्यार्थियों में कुछ विशिष्ट लक्षणों का होना आवश्यक माना है। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने विद्यार्थियों को निम्न दोषों से दूर रहने की सलाह दी है जो निम्न है शरीर और बुद्धि में जड़ता (आलस्य), नशा, मोह किसी वस्तु में फसावट, चपलता, और इधर–उधर की व्यर्थ कथा करना–सुनना, पढते–पढते रूक जाना, अभिमानी, अत्यागी होना। जो इनमें से किसी/किन्हीं दोषों में फँस जाता है उसे विद्या/ज्ञान की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। इसलिए विद्यार्थियों को शुभलक्षण युक्त होना चाहिए जैसे सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्य, जितेन्द्रिय, सुशीलतादि शुभगुण युक्त, विचारशील, परिश्रमी ब्रह्मचारी/ब्रह्मचारिणी होना आवश्यक माना है।

अध्यापक: स्वामी जी ने केवल विद्यार्थियों के लिए ही लक्षणों का निर्धारण नहीं किया है बल्कि अध्यापक/आचार्यों हेतु भी यथोचित मार्गदर्शन प्रदान किया गया है। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में उल्लेखित किया है कि ''जो अध्यापक पुरूष व स्त्री दुष्टाचारी हो, उनसे शिक्षा न दिलावें किन्तु जो पूर्ण विद्या युक्त और धार्मिक हो, वे ही पढाने एवं शिक्षा देने के योग्य हैं।''

स्वामी जी के अनुसार 'जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढा देवें उसको आचार्य कहते हैं। स्वामी जी ने आचार्य के गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''आचार्य वह है, जो शब्दों, उनके अर्थो एवं उनके सम्बन्धों को जानता है, जो मिथ्याभिमान एवं कपट से मुक्त है, जो सब छात्रों को असीम प्रेम से ज्ञान प्रदान करता है और जो उदार एवं पक्षपात रहित है।''

विद्यालय: स्वामी जी बालक–बालिकाओं की सहशिक्षा के पक्ष धर नहीं थे वे चाहते थे कि दोनों के लिए अलग–अलग पाठशालाऐं होनी चाहिए जो कि आवासीय हों। स्वामी जी की विद्यालय सम्बन्धी धारणा का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास के प्रथम श्लोक में निम्नानुसार वर्णित है–विद्या पढने का स्थान एकान्त देश (स्थान) में होना चाहिए। पाठशालाओं को ग्राम व नगर से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर होना चाहिए। लडके और लड़कियों की पाठशाला एक दूसरे से दो कोस की दूरी पर होना चाहिए। जो वहॉ अध्यापिका और अध्यापक पुरूष व नौकर चाकर हों वे कन्याओ की पाठशाला में सब स्त्री और पुरूषों की पाठशाला में पुरूष रहें। लडकियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और लड़कों की पाठशाला में पॉच वर्ष की लड़की का भी प्रवेश निषेध रहे अर्थात् जब तक वे विद्यार्थी रहें ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहें तब तक स्त्री का पुरूष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषयकथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें।

स्वामी जी द्वारा कुछ प्रमुख गुरूकुल संस्थानों की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण देश में डी.ए.वी. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों तथा आर्य कन्या विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें लाखों विद्यार्थी विद्या अध्ययन कर रहे हैं।

अनुशासन: स्वामी जी बालकों में अनुशासन के लिए दण्ड देने की आवश्यकता पर भी बल देते थे। सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास 2 में उन्होंने व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण दिया है:

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विशोक्षितः। लालना श्रायिणो दोशास्ताडना श्रयिणो गुणाः।।

अर्थात् जो माता–पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताडन करते हैं, वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों व शिष्यों का लाडन करते है, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट–भ्रष्ट कर देते है क्योकि लाडन से सन्तान और शिष्य दोष युक्त तथा ताड़न से गुणयुक्त होते

हैं और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़न से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता–पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।

स्त्री शिक्षाः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने हमेशा स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन किया है। वे सदैव ही बालकों की भॉति बालिकाओं की भी शिक्षा के पक्षधर रहे तथा बालिकाओं को भी 20 वर्ष तक शिक्षा पूर्ण करने पर बल दिया उन्होने मनुस्मृति के श्लोकः ''कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम'' मनुस्मृति {6/152} का सत्यार्थ प्रकाश में उल्लेख कर कहा है कि राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखकर विद्वान कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने, तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात लड़का व लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य कुल में रहें। जब तक समावर्त्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।

स्वामी जी ने चतुर्थ समुल्लास (सत्यार्थ प्रकाश) में एक प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवे वर्ष तक कन्या के लिए विवाह का समय उत्तम है। अर्थात् स्वामी जी चाहते थे कि बालिकाऐं भी विवाह होने तक बालकों की भॉति सम्पूर्ण शिक्षा ग्रहण करें। तदुउपरान्त बालिकाऐं या उनके माता–पिता उनका विवाह करें।

स्वामी जी चाहते थे कि जैसे लड़के ब्रह्मचर्य–सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके विदुशी अपने अनुकूल, प्रिय, सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे ही (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ, पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त होके, पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश, प्रिय, विद्धान (युवानम) और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरूष को (विन्दते) होवें, इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

निष्कर्ष

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी उन महान विभूतियों में से एक हैं जिन्होने किसी क्षेत्र विशेष में उल्लेखनीय कार्य न कर वर्तमान समय की प्रत्येक समस्या चाहे वह धार्मिक, सामाजिक या सांस्कृतिक हों प्रत्येक क्षेत्र में सार्थक समाधान प्रस्तुत कर पथ प्रदर्शक का कार्य किया है। वह एक भारतीय दार्शनिक, समाजिक नेता और आर्य समाज के संस्थापक थे। आपके द्वारा ही वैदिक धर्म का एक सुधार आंदोलन चलाया गया।

स्वामी जी उन महान क्रान्तिदर्शी मनीषियों मे से हैं जिन्होने समस्त भारत में एक भाषा, एक धर्म और एक राष्ट्र की उदान्त कल्पना को चरितार्थ करने के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। स्वामी जी ने अपने चिन्तन को अमूर्त नहीं रखा बल्कि उसे लोगों तक पहुॅचाने के लिए साकार रूप दिया। स्वामी जी का प्रभाव सभी क्षेत्रों पर पड़ा धार्मिक–सुधार आन्दोलन के आप साहसी प्रणेता तो थे ही साथ ही साथ छुआ–छूत, जाति–पॉति, धर्म–सम्प्रदाय में बटे हुए भारतीय समाज के सच्चे संगठनकर्ता एवं सुधारक थे, आपने राजनैतिक जाग्रति भी उत्पन्न की जिससे भारतीयों में आत्म स्वाभिमान जाग्रत हुआ और जो पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने में भी सहायक हुआ।

शिक्षा में भी भेदभाव दूर करने का कार्य स्वामी जी ने किया, सार्वभौमिक, अनिवार्य शिक्षा, स्त्रियों को पुरूषों के समान शिक्षा प्रदान करने पर बल देना, नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा, संस्कारों की शिक्षा आदि पर बल देकर भारतवर्ष में एक प्राचीन वैदिक संस्कृति को पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया।

स्वामी ने स्त्री एवं पुरूषों को अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करने पर बल दिया तथा कहा कि यह राज नियम होना चाहिए कि प्रत्येक बालक एवं बालिका को अनिवार्य रूप से शिक्षा प्रदान की जाना चाहिए। स्वामी जी द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाकर मातृभाषा के रूप में शिक्षा देने पर बल दिया साथ ही उन्होने द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत को स्थान प्रदान कर देश की प्राचीन सभ्यता का गौरव भी बनाए रखा एवं अंग्रेजी को तृतीय भाषा का दर्जा देकर सभी भाषाओं के प्रति सम्मान की भावना का प्रदर्शन किया गया। स्वामी जी का यही त्रिभाषी फार्मूला आज हमारी शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बन चुका है।

स्वामी जी द्वारा शिक्षा सम्बन्धी विचारों में जो व्यवहारिकता परिलक्षित होती है उसके आधार पर समकालीन

अन्य शिक्षा शास्त्रीयों में उन्हें अग्रणी माना जा सकता है। स्वामी जी के द्वारा स्थापित सिद्धाँतों में यदि स्थायित्व न होता तो आज हमारी प्रगति इनती द्रुतगामी नहीं होती, और उनके अनुयायी भी अन्य मत–मतान्तरों के अनुयायियों की तरह उँगली पर गिनने योग्य रह जाते किन्तु हम देखें कि उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज आज विश्वव्यापी हो गया है।

सन्दर्भ सूची

1. सत्यार्थ प्रकाश (1884)।
2. आर्योद्देश्य रत्न माला (1877)।
3. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (1878)।
4. व्यवहारभानु (1879)।

****